(3) नेतिकर्म — नेतिकर्म दो प्रकार से की जाती है — (a) जलनेति (b) सूत्रनेति। पहले जलनेति करनी चाहिए। प्रातःकाल दातौन के समय जो साँस चल रही हो उससे एक चुल्लू जल लेकर दूसरी ओर के नाक को बन्दकर खींचो। जल मुख में चला आयेगा। शुरू में सिर के पिछले हिस्से में, जहाँ मस्तिष्क का स्थान है, उस कर्म के प्रभाव से गुदगुदाहट या सनसनाहट पैदा होगी। अभ्यास बढ़ने पर ऐसा नहीं होगा। एक समय में आधा लीटर से एक लीटर तक जल एक नासापुट से डालकर दूसरी नासिका पुट से निकाली जा सकती है।

जलनेति से नेत्रज्योति बलवान होती है। तीक्ष्ण नेत्ररोग, तीक्ष्ण अम्लपित्त और नए ज्वर में जलनेति नहीं करना चाहिए।

(b) नाक के एक छिद्र से दूसरे छिद्र में सूत भी चलाया जाता है। सूत नाक के एक छिद्र से मुखद्वारा जब खींचा जाता है तो रेचक मुखद्वारा न कर दूसरे रन्ध्र द्वारा करना चाहिए। इस प्रकार सूत एक छिद्र से दूसरे छिद्र में आ जाता है। इस क्रिया को करने में किसी प्रकार का भय नहीं है। सध जाने पर इसे तीसरे दिन करना चाहिए। जलनेति प्रतिदिन किया जा सकता है।

नेति कपाल को शुद्ध करती है, दिव्य दृष्टि देती है। कंधा, बाह और कंधों की संधि के ऊपर के सारे रोगों को 'नेति' दूर करती है। पित्त प्रकोप के समय जलनेति का प्रयोग (प्रयोग) लाभकारी है।

(4) नौलि या न्योली — कंधों को झुकाकर अत्यंत गति के साथ अपने पेट को दाहिने बायें भाग की घुमाने की प्रक्रिया को सिद्धों ने 'नौलि' कहा है — अमन्दावर्तवेगेन तुन्दं सव्यापसव्यतः। (हठप्रदीपिका) नतांसो भ्रामयदेषा नौलि सिद्धैः प्रचक्ष्यते॥ पद्मासन लगाकर शौच, प्रातः संध्या आदि से निवृत्त होकर, बिना देह हिलाए, मनोबल से रेचक कर, वायु को बाहर रोककर, बायें से दायें हिलायें। इस प्रकार पेट को दायें से बायें और बायें से दायें लगातार करते रहने पर पसीना आने लगता है, पेट की स्थूलता दबने लगती है, दोनों कुक्षियाँ दब जाती हैं और बीच में से दोनों ओर से दो नल जुड़कर मूलाधार से हृदय तक एक गोलाकार खंभा खड़ा हो जाता है। इसे चलाने में छाती के समीप, कण्ठ पर और ललाट पर भी नाड़ियों का संघर्ष मालूम पड़ता है। एक बार नौलि चल पड़ने पर चल जाती है। जो प्रयासपूर्वक

अभ्यास करता है, एक महीने में उसे नौलि सिद्ध हो जाती है। इस क्रिया को शांति पूर्वक करना चाहिए। यह मन्दाग्नि को खत्म करती है और पाचन क्रिया को सशक्त बनाती है। नौलि करने के बाद कण्ठ को एक अकथनीय स्वाद का आनन्द मिलता है। यह हठयोग की सारी क्रियाओं में श्रेष्ठ है। धौति, वस्ति में भी नौलि की आवश्यकता है। अभी तक इसके समकक्ष कोई क्रिया नहीं तैयार हुई है। पाश्चात्य-जगत में

(5) त्राटक — एकाग्रचित्त होकर एकटक दृष्टि से मनुष्य सूक्ष्म पदार्थ को तब तक देखे, जब तक आँसू न गिरने लगे — 'निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः। अश्रुसम्पात पर्यन्तमाचार्यैः त्राटकं स्मृतम् ॥
(हठप्रदीपिका)
सफेद दिवाल पर सरसों के दाने के बराबर काला चिह्न बनाकर उसी पर दृष्टि ठहराते-2 चित्त समाहित हो जाता है तथा दृष्टि शक्ति सम्यक् हो जाती है।
मेस्मेरिज्म में जो शक्ति आ जाती है, वही त्राटक से भी प्राप्त होती है। अम्लपित्त, जीर्णज्वर, तम्बाकू, गांजादि के सेवन करनेवाले त्राटक नहीं करें। त्राटक के जिज्ञासुओं को नेत्र-व्यायाम करना विशेष लाभदायक है।

(6) कपालभाति — लोहार की भाथी के समान अत्यन्त शीघ्रता से क्रमशः रेचक-पूरक प्राणायाम को शान्तिपूर्वक करना कपालभाति कहा गया है, यह कफ दोष नाशकारी है।
भस्त्रावल्लोहकारस्य रेचपूरौ ससम्भ्रमौ।
कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषणी ॥ (हठयोगप्र०)
अजीर्ण, धूप में घूमने से पित्त वृद्धि, चिन्ता से उत्पन्न रोग, जीर्ण कफ-व्याधि, कृमि, रक्त-विकार, आमवात, विषविकार के रोगों में यह अधिक गुणकारी है और स्वाच त्वचा
हृदय की निर्बलता, वमन रोग, तीक्ष्ण ज्वर, स्वरभंग, मन की भ्रमित अवस्था, अनिद्रा आदि की अवस्था में इस क्रिया को नहीं करना चाहिए।
इस प्रकार आवश्यकता न होने पर इस क्रिया को नित्य न करें। शरद ऋतु में स्वाभाविक रूप से पित्त में वृद्धि होती रहती है। ऐसे समय में आवश्यकतानुसार यह क्रिया की जा सकती है।

Uma Parmar, Dehradun